भारतीय श्रम की विशेषताएं
(CHARACTERISTICS OF INDIAN LABOUR)

भारत में औद्योगिक विकास का स्तर पश्चिमी देशों से नीचा है। इसलिए यहां के औद्योगिक श्रमिकों में यूरोप के श्रमिकों की भांति न तो स्थायित्व है और न ही उद्योग के प्रति भारी लगाव है। भारतीय श्रम की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

1. **प्रवासी स्वरूप** (Migratory character)– भारतीय श्रम की प्रवासी प्रवृत्ति इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। श्रम के प्रवासी स्वरूप का तात्पर्य यह है कि श्रमिक गांवों से आकर नगरों में अस्थायी रूप से बस जाते हैं और मिलों तथा कारखानों में काम करते हैं। वे औद्योगिक नगरों में स्थायी रूप से नहीं रहना चाहते और अपने गांवों से सम्बन्ध बनाए रखते हैं। अनेक श्रमिक तो गांवों में ही अपने परिवार छोड़ आते हैं और अवकाश प्राप्त कर अथवा काम पर अनुपस्थित होकर गांव जाते रहते हैं। भारत में अधिकांश औद्योगिक नगरों में काम करने वाले श्रमिक वहां आकर्षित होकर नहीं आए हैं। जनसंख्या में वृद्धि के कारण भूमि पर बढ़ते हुए जन भार से उत्पन्न प्रच्छन्न बेरोजगारी से विवश होकर इन्होंने गांव छोड़ने का निश्चय किया है। इस प्रकार वे शहरों को 'धकेले' जाते हैं, न कि वहां 'खिंच कर आते हैं।'

2. **स्थायित्व का अभाव** (Lack of stability)– भारतीय श्रमिकों के प्रवासी स्वरूप के कारण भारत के औद्योगिक नगरों में श्रम की पूर्ति स्थायी नहीं है। श्रम जांच आयोग, 1946 के मतानुसार, जांच के समय औद्योगिक श्रमिकों में केवल 30 प्रतिशत नगरों में स्थायी रूप से बसे हुए थे। परन्तु विगत छः दशकों में स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है। भारत सरकार के श्रम तथा रोजगार मंत्रालय के लेबर-ब्यूरो द्वारा किए गए 'फैमिली लिविंग सर्वेज' से पता चलता है कि अब भारत के विभिन्न औद्योगिक नगरों में 60 से 90 प्रतिशत श्रमिक स्थायी रूप से बस गए हैं। अतएव, अब औद्योगिक श्रम की पूर्ति में काफी स्थायित्व रहता है।

3. **अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति** (Absenteeism)– भारतीय औद्योगिक श्रमिकों में काम पर अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है। इस देश में विभिन्न उद्योगों में यह 6 से 20 प्रतिशत तक है। परन्तु अधिकांश औद्योगिक इकाइयों में यह दर 10 से 12 प्रतिशत के बीच है। यह पश्चिमी देशों की अनुपस्थिति दरों से कहीं अधिक है। भारत सरकार के लेबर ब्यूरो के अनुसार, अनुपस्थिति दर ऊंची होने के अनेक कारणों में बीमारी, दुर्घटनाएं,

Scanned with CamScanner

सामाजिक तथा धार्मिक संस्कार तथा छुट्टी के अतिरिक्त अवकाश की आकांक्षा अधिक महत्वपूर्ण कारण हैं। श्रम जांच समिति के अनुसार रात की पाली में अनुपस्थिति दर दिन की पाली में अनुपस्थिति दर से ऊंची रहती है। इसका सम्भवतः एकमात्र कारण यह है कि रात की पाली में काम करना दिन की पाली से अधिक कष्टदायक होता है। ऐसे श्रमिक जिनका गांव से संबंध बना रहता है, अक्सर कृषि कार्य में अपने परिवार के सदस्यों को सहयोग प्रदान करने गांव चले जाते हैं। अतः फसल की तैयारी के समय अनुपस्थिति दर अधिक हो जाती है।

4. औद्योगिक जीवन स्वीकार न करना (Reluctance to accept industrial life)– भारत में औद्योगिक श्रमिकों के बारे में यह सामान्य प्रचलित धारणा है कि उन्हें नगरों में रहते हुए भी औद्योगिक जीवन के प्रति लगाव नहीं है। श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति और ऊंची अनुपस्थिति दर के आधार पर यह धारणा बनी प्रतीत होती है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस समय भी भारत के औद्योगिक श्रमिकों का भारी प्रतिशत गांवों से जुड़ा है, परन्तु इनमें से अधिकांश लोगों ने औद्योगिक जीवन को स्वीकार कर लिया है। ये लोग रिश्तेदारों से मिलने, छुट्टी मनाने अथवा विवाह आदि सामाजिक संस्कारों के लिए ही गांव जाते हैं।

5. कार्यकुशलता का नीचा स्तर (Low level of efficiency)– भारतीय श्रमिक पश्चिमी देशों के श्रमिकों की तुलना में कम कार्यकुशल समझा जाता है। उसकी प्रति घण्टा उत्पादिता थोड़ी है और इसका एकमात्र कारण उसकी कार्यकुशलता का नीचा स्तर समझा जाता है। परन्तु अनेक विद्वान भारतीय श्रमिकों की उत्पादिता के नीचे स्तर के लिए प्रबन्धकों की अकुशलता, दिनातीत मशीनों तथा तकनीक के पिछड़ेपन को जिम्मेवार ठहराते हैं। इनके अनुसार यदि श्रमिकों की उत्पादिता कम है तो इसका उत्तरदायित्व उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उन्हें कार्य करना होता है।

6. दोषपूर्ण श्रम-संघवाद (Defective trade unionism)– भारत में श्रमिक वर्ग में चेतना का स्तर नीचा है। सामान्य श्रमिक श्रम-संघों के प्रति उदासीन है। इसके अतिरिक्त श्रम विरोधी राजनैतिक दल मिल मालिकों की सहायता से श्रम-संघ बनाकर श्रमिक आन्दोलनों में फूट डालने का कार्य करते हैं। अब धीरे-धीरे श्रमिक श्रम-संघों की महत्ता को समझने लगे हैं, परन्तु प्रायः वे यह निर्णय करने में असमर्थ रहते हैं कि कौन से श्रम-संघ उनके हितों का सही प्रतिनिधित्व करते हैं।

श्रमिकों के रोजगार और कार्य की दशाएं
(EMPLOYMENT AND WORKING CONDITIONS OF LABOUR)

भारत में सभी पूंजीवादी देशों की भांति कारखानों के मालिक मजदूरी के बदले में श्रम शक्ति को खरीदते हैं। श्रमिकों को शोषण से बचाने के उद्देश्य से 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पास किया गया था। इस नियम के अन्तर्गत केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारें न्यूनतम मजदूरी की दरें, अतिरिक्त कार्य के लिए मजदूरी, काम के घंटे, अवकाश की अवधि इत्यादि निर्धारित करती हैं। फैक्ट्री में कार्य की दशाओं का नियमन 1948 के फैक्ट्री अधिनियम के द्वारा होता है। इस अधिनियम के अनुसार फैक्ट्री में सप्ताह में काम के घण्टे 48 होने चाहिए। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को फैक्ट्री में काम पर रखना गैर-कानूनी है। फैक्ट्री अधिनियम श्रमिकों के कल्याण तथा उनकी सुरक्षा के अतिरिक्त फैक्ट्री की इमारत में प्रकाश, हवा, स्वच्छता इत्यादि की व्यवस्थाओं को अनिवार्य ठहराता है। इसी अधिनियम के अनुसार जिन कारखानों में 250 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, वहां पर श्रमिकों के लिए कैंटीन की व्यवस्था आवश्यक है। अधिनियमों की इन व्यवस्थाओं से लगता है कि भारत में मालिकों के शोषण से श्रमिकों को बचाने के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रायः न्यूनतम मजदूरी इतनी कम रहती है कि श्रमिक जीवन निर्वाह के स्तर के ऊपर नहीं उठ पाते। इसके अतिरिक्त भ्रष्ट प्रशासन के कारण मिल मालिक फैक्ट्री अधिनियम की अधिकांश व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हैं।

मिल मालिकों के लिए श्रमिकों की मजदूरी रोकना अवैध है परन्तु जो मिल मालिक ऐसा करते हैं उनके विरुद्ध सरकार द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की जाती। 1936 के मजदूरी भुगतान अधिनियम के अनुसार श्रमिकों द्वारा अर्जित मजदूरी उन्हें एक सप्ताह के भीतर मिल जानी चाहिए। 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम के अनुसार श्रमिकों को बोनस मिलता है। 26 सितम्बर, 1975 के अध्यादेश द्वारा इस देश में समान काम के लिए स्त्री-पुरुषों को मजदूरी समान कर दी गई। 1976 में अध्यादेश का स्थान समान प्रतिफल अधिनियम (Equal Remuneration Act) ने ले लिया।

भारत में सामाजिक सुरक्षा
(SOCIAL SECURITY IN INDIA)

सामाजिक सुरक्षा को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है : (*i*) सामाजिक बीमा, और (*ii*) सामाजिक सहायता। सामाजिक बीमा की योजनाओं के लिए प्रायः कर्मचारियों, नियोजकों और राज्य द्वारा अंशदान किया जाता है। इन योजनाओं से मिलने वाले लाभ प्रायः कर्मचारियों जिनका बीमा होता है, उनके योगदान से जुड़ा होता है। सामाजिक सहायता की योजनाओं के अन्तर्गत गरीब और जरूरतमन्द लोगों को आर्थिक सहायता दी जाती है और इसके लिए किसी तरह के योगदान की शर्त नहीं होती है। भारत में सामाजिक सुरक्षा की अधिकतर योजनाएं पहली श्रेणी में आती हैं। अब हम भारत में सामाजिक सुरक्षा की मुख्य व्यवस्थाओं पर संक्षेप में विचार करेंगे।

Scanned with CamScanner

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
(Employees' Compensation Act, 1923)

भारत में सामाजिक सुरक्षा की शुरुआत 1923 में हुई जब 'श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम' पास किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत केवल कारखानों और दूसरे उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक आते हैं और इसमें औद्योगिक दुर्घटना और काम करते हुए व्यावसायिक रोग लग जाने की स्थिति में श्रमिकों और उनके परिवार के लोगों को हर्जाने की व्यवस्था है। इस अधिनियम का दायरा बहुत विस्तृत है और इसके अन्तर्गत कारखानों के अलावा खनन, परिवहन, बागान, बिजली उत्पादन, भवन निर्माण आदि सभी उद्योग आते हैं। यह अधिनियम उन उद्योगों और कारखानों पर लागू नहीं होता जिनके श्रमिक कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा लिए हुए हैं। **1984 से पहले इस अधिनियम के अन्तर्गत केवल 1,000 रुपये मासिक से कम मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को ही सामजिक सुरक्षा प्रदान की गई थी लेकिन 1984 के संशोधन के द्वारा अब मजदूरी सम्बन्धी प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया गया है।**

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में मृत्यु, स्थायी रूप से पूर्ण विकलांग होने और अस्थायी रूप से विकलांग होने के लिए अलग-अलग दरों पर क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है। स्थायी रूप से पूर्ण विकलांग होने पर क्षतिपूर्ति की न्यूनतम राशि 1,40,000 रुपये तथा मृत्यु होने पर न्यूनतम राशि 1,20,000 रुपये है। क्षतिपूर्ति की अधिकतम राशि मृत्यु होने पर 9.14 लाख रुपये तथा स्थायी रूप से पूर्ण विकलांग होने पर 10.97 लाख रुपये है (वास्तविक देय राशि श्रमिक की आयु तथा मजदूरी पर निर्भर करेगी)। 23 दिसम्बर 2009 को किए गए संशोधन में 'श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम' का नाम 'कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम' कर दिया गया।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
(Maternity Benefit Act, 1961)

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 कुछ विशेष उद्योगों में महिला श्रमिकों को मातृत्व लाभ की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत महिला श्रमिकों को बच्चे के जन्म से 6 सप्ताह पहले और 6 सप्ताह बाद तक मजदूरी सहित छुट्टी पाने का अधिकार है। यही नहीं, यदि महिला श्रमिक का आग्रह हो तो बच्चे के जन्म की अनुमानित तारीख से एक माह पहले की अवधि में उसे कोई भारी काम नहीं दिया जाएगा। यह अधिनियम उन कारखानों, खानों, सर्कस, बागान, दुकानों व प्रतिष्ठानों पर लागू होता है जिनमें 10 या 10 से अधिक व्यक्ति काम करते हों। यदि राज्य सरकारें चाहें तो इसे अन्य क्षेत्रों में भी लागू कर सकती हैं। जिन महिला श्रमिकों को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा मिली हुई है वे मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत नहीं आतीं। **मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 में लाभ प्राप्त करने के लिए मजदूरी के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।**

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
(Employees' State Insurance Act, 1948)

सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम 1948 में उठाया गया जब कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत बिजली से चलने वाले वे गैर-मौसमी कारखाने (non-seasonal factories) आते हैं जिनमें 10 या अधिक श्रमिक काम करते हों और वे बिजली से न चलने वाले कारखाने हैं जिनमें 20 या अधिक श्रमिक काम करते हों। अब राज्य सरकारें इस अधिनियम के अन्तर्गत उन होटलों, रेस्तरां, दुकानों, सिनेमाघरों, सड़क परिवहन कंपनियों, समाचार-पत्रों के प्रतिष्ठानों आदि को भी ला रही हैं जिनमें 20 या अधिक श्रमिक काम करते हैं। **1 मार्च 2010 से इस अधिनियम के अन्तर्गत उन कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा लाभ प्राप्त है जिनकी मासिक मजदूरी 15,000 रुपए से कम है।** भारतीय सेना में कार्यरत व्यक्ति इस योजना के सदस्य नहीं हैं।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना के प्रशासन की जिम्मेदारी कर्मचारी राज्य बीमा निगम की है जिसकी स्थापना अक्तूबर 1948 में हुई थी। इसके सदस्यों में केन्द्रीय सरकार के श्रम मन्त्री और स्वास्थ्य मन्त्री के अलावा राज्य सरकारों और नियोजकों के प्रतिनिधि और केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत चिकित्सक होते हैं। कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने इस सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करने के लिए क्षेत्रीय बोर्ड और स्थानीय समितियों का गठन किया है।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत बीमाकृत कर्मचारियों को मुख्य रूप से छः तरह के लाभ प्राप्त हैं। ये हैं चिकित्सा लाभ, अस्वस्थता लाभ, विकलांगता लाभ, मातृत्व लाभ, आश्रितों को लाभ और अंत्येष्टि लाभ। चिकित्सा लाभ में बीमाकृत कर्मचारी और उसके परिवार को निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। अस्वस्थता लाभ की योजना में बीमाकृत व्यक्ति को प्रमाणित बीमारी की स्थिति में नकदी में भुगतान होता है। दो लगातार बीमारियों में यह अधिक-से-अधिक 91 दिन के लिए हो सकता है लेकिन लम्बी बीमारी में यह अवधि बढ़ाई जा सकती है। मातृत्व लाभ में बीमाकृत महिला कर्मचारियों को मातृत्व के लिए अधिक-से-अधिक 12 सप्ताह का मजदूरी सहित अवकाश मिलता है। स्थायी और अस्थायी विकलांगता और व्यावसायिक बीमारियों के लिए मुआवजे की व्यवस्था है। कर्मचारियों की काम करते हुए दुर्घटना हो जाने पर मृत्यु होने की स्थिति में आश्रितों को मुआवजा दिया जाता है। आश्रितों की श्रेणी में विधवा, नाबालिग बच्चे और आश्रित माता-पिता आते हैं। अन्त्येष्टि लाभ के अन्तर्गत बीमाकृत कर्मचारी की अन्त्येष्टि पर खर्च के लिए परिवार के सबसे बड़े सदस्य को नकदी में कुछ भुगतान होता है।

इस योजना के अधीन बीमाकृत लोगों की संख्या 1.71 करोड़ है जिसमें 24 लाख बीमाकृत महिलाएं भी शामिल हैं। इस योजना के तहत लाभभोगियों की संख्या 6.01 करोड़ है।

Scanned with CamScanner

कर्मचारी भविष्य-निधि तथा विविध धारा अधिनियम, 1952
(Employees' Provident Fund And Miscellaneous Provisions Act, 1952)

कर्मचारी भविष्य-निधि तथा विविध धारा अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत कर्मचारियों को भविष्य निधि, परिवार पेंशन तथा जमाओं से जुड़े बीमा (deposit linked insurance) के रूप में सेवा निवृत्त लाभ की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम का उद्देश्य है : (1) औद्योगिक श्रमिक जब सेवा निवृत हो तो उसके भविष्य के लिए कुछ व्यवस्था करना; (2) कर्मचारी की मृत्यु हो जाने की स्थिति में उसके आश्रितों के लिए व्यवस्था करना; और (3) कर्मचारी में बचत की भावना को प्रोत्साहन देना। **यह अधिनियम 186 उद्योगों पर लागू है। इस अधिनियम के दायरे में वे ही औद्योगिक इकाइयां आती हैं जिनमें 20 या उससे ज्यादा श्रमिक काम करते हैं।** अंशदान (contribution) की दर 12 प्रतिशत है। अधिनियम के अन्तर्गत, नियोजक अंशदान में बराबर हिस्सा (matching contribution) देंगे।

कर्मचारी भविष्य-निधि तथा विविध धारा अधिनियम, 1952 की व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारी भविष्य-निधि की पूरी राशि निम्नलिखित स्थितियों में पाने के हकदार होते हैं : (*i*) सेवानिवृत्ति की आयु पर अवकाश ग्रहण करना; (*ii*) स्थायी और पूर्ण विकलांगता की स्थिति में अवकाश ग्रहण करना; और (*iii*) व्यापक स्तर पर छटनी के दौरान नौकरी से निकाला जाना। नियोजक का ब्याज सहित पूरा अंशदान तभी मिलता है जब कर्मचारी भविष्य-निधि योजना का सदस्य कम-से-कम 15 वर्ष रहा हो। इससे कम समय की नौकरी होने पर कर्मचारी को नियोजक के अंशदान का आंशिक हिस्सा ही मिलता है लेकिन उसे अपने अंशदान की पूरी राशि ब्याज सहित मिलती है। इस योजना के अन्तर्गत इसके सदस्य को आकस्मिक खर्चों जैसे बीमारी, मकान बनाना, अपने और आश्रितों के विवाह, संपत्ति की किसी विपत्ति में हानि इत्यादि के लिए वापस न करने वाला अग्रिम मिल सकता है।

कर्मचारी भविष्य-निधि योजना
(Employees' Provident Fund Scheme)

कर्मचारी भविष्य-निधि योजना कर्मचारियों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में एक प्रयास है। इसके अधीन अनिवार्य बचत (compulsory saving) की व्यवस्था है। इस योजना में 6,500 रुपए प्रति मास से कम कमाने वाले कर्मचारियों को शामिल किया गया है। 31 मार्च, 2011 तक इस अधिनियम के अधीन 7,01,400 प्रतिष्ठान तथा फैक्ट्रियां शामिल थीं और सदस्यों की कुल संख्या 695.12 लाख थी। कर्मचारी भविष्य-निधि योजना के अधीन एक मृत्यु राहत फंड (Death Relief Fund) स्थापित किया गया है। इसके अधीन सदस्य की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था है।

सामाजिक सुरक्षा की अन्य योजनाएं
(Other Schemes of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा की अन्य योजनाओं में कुछ उल्लेखनीय योजनाएं हैं : (*i*) कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना (Deposit Linked Insurance Scheme), (*ii*) ग्रेच्युटी भुगतान योजना (Payment of Gratuity Scheme) तथा (*iii*) कर्मचारी पेंशन योजना, 1995 (The Employees' Pension Scheme 1995)।

कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना 1 अगस्त, 1976 से उन कर्मचारियों के लिए जो कर्मचारी भविष्य-निधि और मुक्त (exempted) भविष्य-निधि के सदस्य हैं, लागू की गई है। इसमें कर्मचारियों को अंशदान नहीं करना होता। केवल नियोजक और सरकार ही बीमा कोष में अंशदान करते हैं। कर्मचारी की (जो भविष्य-निधि का सदस्य है) मृत्यु हो जाने पर उस व्यक्ति को जिसे भविष्य-निधि मिलती है पिछले तीन वर्षों में भविष्य-निधि की औसत राशि के बराबर अतिरिक्त राशि दी जाती है। **8 जनवरी 2011 से इस योजना के अन्तर्गत मिलने वाली अधिकतम राशि 1,30,000 रुपये हो सकती है।** ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम 1972 कारखानों, खानों, तेल-क्षेत्र, बागान, रेल, बन्दरगाहों, मोटर परिवहन उद्यमों, कंपनियों, दुकानों और दूसरे प्रतिष्ठानों में काम करने वाले कर्मचारियों पर लागू होता है। **कर्मचारी द्वारा प्रति वर्ष की गई नौकरी के बदले में 15 दिन की ग्रेच्युटी दी जाती है परन्तु ग्रेच्युटी की अधिकतम राशि 10 लाख रुपये है।** औद्योगिक श्रमिकों के लिए 16 नवम्बर, 1995 से कर्मचारी पेंशन योजना शुरू की गई। इस योजना के अधीन, 33 वर्ष की सेवाएं पूरी होने पर सेवानिवृत्त कर्मचारियों के लिए 50 प्रतिशत की दर से पेंशन देने की व्यवस्था है। पेंशन का हकदार होने के लिए कम से कम 10 वर्ष की नौकरी करना अनिवार्य है। इस योजना के अधीन परिवार पेंशन की भी व्यवस्था है। कर्मचारी की मृत्यु के समय उसकी नौकरी कितनी हो चुकी थी और उसका वेतन कितना था इसके आधार पर परिवार पेंशन का निर्धारण होता है। परिवार पेंशन 450 रुपए प्रति मास से लेकर 2,500 रुपए प्रति मास के बीच हो सकती है। इसके अलावा बच्चों के लिए पेंशन की भी व्यवस्था है। इसकी राशि विधवा की पेंशन का 25 प्रतिशत (परन्तु कम से कम 150 रुपए प्रति बच्चा) हो सकती है (अधिकतम दो बच्चों तक ही इस प्रकार की पेंशन देने की व्यवस्था है)। इस योजना के लिए साधन भविष्य निधि में नियोजकों के योगदान (8.33 प्रतिशत) से प्राप्त किए जाते हैं। इसके अलावा, केन्द्र सरकार मजदूरी का 1.16 प्रतिशत इस योजना में जमा कराती है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा के उपायों का मूल्यांकन
(An Appraisal of the Social Security Measures in India)

1. सीमित दायरा (Insufficient coverage)– भारत में सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका दायरा बहुत सीमित है। बहुत से लोगों को किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय सैंपिल सर्वेक्षण संगठन द्वारा

Scanned with CamScanner

1999-2000 में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि देश के संगठित और असंगठित क्षेत्रों में कुल मिला कर 39.9 करोड़ व्यक्ति कार्यरत हैं जिसमें से मात्र 2.8 करोड़ संगठित क्षेत्र में कम कर रहे हैं। इस प्रकार 37.1 करोड़ व्यक्ति (अर्थात 92.0 प्रतिशत व्यक्ति) असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे हैं।[1] **असंगठित क्षेत्र में कार्यरत इन लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा की कोई उपयुक्त योजना नहीं है।**[2] सबसे चिन्ताजनक स्थिति कृषि श्रमिकों की है जिनकी संख्या 23.90 करोड़ है क्योंकि न तो इन लोगों को नियमित रोजगार प्राप्त है और न ही इनके पास कोई भूमि या संपत्ति है। संगठित क्षेत्र में भी सामाजिक सुरक्षा उपाय उन्हीं प्रतिष्ठानों तक सीमित हैं जिनमें 20 या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं।

संगठित और असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत लोगों के अलावा **बहुत सारे लोग ऐसे वर्ग में आते हैं जिसे 'रोजगार अयोग्य' (unemployable) वर्ग कहा जा सकता है** जैसे वृद्ध व बीमार व्यक्ति, अंगहीन व्यक्ति, इत्यादि। इन लोगों के लिए कोई सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था नहीं है। हाल के वर्षों में सरकार का ध्यान इन लोगों की तरफ आकर्षित हुआ है तथा उसने वृद्ध लोगों के लिए एक पेंशन योजना की शुरुआत की है। सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत चार सामान्य बीमा कंपनियों ने जुलाई 2003 से एक विशिष्ट स्वास्थ्य बीमा योजना लागू की है जिसे 'सर्वसार्विक स्वास्थ्य बीमा योजना' (Universal Health Insurance Scheme) का नाम दिया गया है। वृद्ध लोगों के लिए एक समेकित (integrated) योजना शुरू की गई है जिसके अधीन वृद्ध गृह (old age homes), स्वास्थ्य केन्द्रों तथा चलती फिरती (mobile) स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध कराने की व्यवस्था है।

2. एकीकृत योजना का अभाव (Lack of an integrated scheme)– भारत में सामाजिक सुरक्षा की कोई एकीकृत (integrated) योजना नहीं है। इसकी वजह से सामाजिक सुरक्षा के लिए विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत अलग-अलग व्यवस्थाएं की गई हैं जो कुछ मायनों में एक ही तरह की हैं। इससे प्रशासनिक स्तर पर धन और प्रयास दोनों की बर्बादी होती है। सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्थाओं से लोगों को मिलने वाले लाभ बहुत सीमित हैं। उदाहरण के लिए, कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत स्थापित चिकित्सालय और औषधालय आवश्यकता से बहुत कम हैं। प्रायः इनमें डाक्टर, नर्स आदि कम रहते हैं और सुविधाएं भी अपर्याप्त हैं।

3. बेरोजगारी बीमा का अभाव (Absence of unemployment insurance)– भारत की सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी बेरोजगारी बीमा का अभाव है। अनेक विकसित देशों में उन सभी लोगों को जो काम करने के लिए इच्छुक होते हुए भी काम पाने में असमर्थ रहते हैं, सरकार से बेरोजगारी अनुदान मिलता है। लेकिन अन्य अल्पविकसित देशों की तरह भारत में भी इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस पर आने वाला खर्च इतना ज्यादा होगा कि वह सरकार की सामर्थ्य के बाहर होगा। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि किसी भी देश में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था उस समय तक पूर्ण नहीं मानी जा सकती जब तक वहां सरकार बेरोजगारी अनुदान की व्यवस्था नहीं करती।

श्रम-संघ
(TRADE UNIONS)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिक वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए संगठन बनाता है। ये संगठन नियोजकों पर विभिन्न प्रकार के दबाव डालकर मजदूरी में वृद्धि करवाते हैं। इनके प्रयास से ही प्रायः काम की दशाओं में सुधार होता है। श्रमिक और नियोजकों के बीच संघर्ष सदैव रहा है, परन्तु श्रमिक श्रम-संघों के रूप में अपने को संगठित करना तभी सीखे हैं जब से कारखानों की स्थापना बड़े पैमाने पर हुई है।

भारत में इस समय दस केन्द्रीय श्रम-संगठन हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि श्रम-आंदोलन में एकता का अभाव है। सदस्य संख्या के आधार पर कांग्रेस नियंत्रित इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस सबसे बड़ा केन्द्रीय श्रम-संगठन है। इससे संबंधित श्रम-संघों की संख्या भी सबसे ज्यादा है। भारतीय मजदूर संघ सदस्य संख्या के आधार पर दूसरे नम्बर का केन्द्रीय संगठन है। इस पर भारतीय जनता पार्टी का नियंत्रण है। सेन्टर ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन, ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (लेनिन सरणी) वामपंथी दलों के प्रभाव वाले केन्द्रीय श्रम-संगठन हैं। ये संगठन श्रमिकों की मांगों के लेकर प्रायः संघर्ष का रास्ता अपनाते हैं। हिन्दू सभा पर पुराने समाजवादियों का नियंत्रण है।

भारत में श्रम-संघ आंदोलन के सामने बाधाएं
(Obstacles to Trade Union Movement in India)

भारत में पहला श्रम संघ 1918 में बनाया गया था। इस प्रकार, भारत में श्रम-संघ आंदोलन अब 95 वर्ष पुराना हो चुका है। परन्तु इसमें पश्चिमी देशों वाली परिपक्वता नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

1. श्रमिकों का प्रवासी चरित्र (Migratory character of workers)– भारत में औद्योगिक नगरों में काम करने वाले अधिकांश श्रमिक वहां के स्थायी निवासी नहीं हैं। वें गांव से आकर नगरों में अस्थायी रूप से काम करते हैं। प्रायः उनके परिवार गांवों में ही रहते हैं। ये श्रमिक गाँवों से अपना सम्बन्ध पूरी तरह से नहीं तोड़ते इसलिए इनकी दिलचस्पी श्रम-आंदोलन में ज्यादा नहीं होती। अपनी इसी प्रवासी प्रवृत्ति के कारण भारी संख्या में श्रमिक

1. S. Sakhtival and Pinaki Joddar, "Unorganised Sector Workforce in India", *Economic and Political Weekly*, May 27, 2006, Table 1, p. 2108 and Table 3, p. 2109.
2. असंगठित सेक्टर के उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector) ने असंगठित श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक योजना का सुझाव भारत सरकार को 16 मई, 2006 को दी गई अपनी रिपोर्ट में दिया है। इस योजना में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत 30 करोड़ श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था है।

Scanned with CamScanner

किसी भी श्रम-संघ के सदस्य नहीं बनते। प्रायः श्रमिक श्रम-संघ द्वारा मजदूरी में वृद्धि के लिए संघर्ष में आरम्भ में उत्साह दिखलाते हैं परंतु हड़ताल लम्बी चलने पर वे गांव चले जाते हैं और फिर एक ओर तो उनका उत्साह ठंडा हो जाता है और दूसरी ओर हड़ताल का समर्थन कम हो जाता है।

2. श्रमिक वर्ग की गरीबी (Poverty of the working class)– भारत में मजदूरी का स्तर नीचा है और पश्चिमी देशों की तुलना में यहां का सामान्य श्रमिक गरीब है। अतः भारी संख्या में श्रमिक श्रम-संघों के सदस्य इसलिए नहीं बनते, क्योंकि वे अपने आप को श्रम-संघों को चन्दा देने में असमर्थ समझते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय श्रम-संघों की सदस्यता कम है और उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। अनेक श्रम संघों के कोई भी आर्थिक साधन नहीं हैं। ऐसे श्रम-संघों पर पेशेवर राजनैतिक नेताओं का नियन्त्रण होता है जो अपने स्वार्थ के लिए इनका प्रयोग करते हैं। गरीबी के कारण श्रमिक जो किसी-न-किसी श्रम-संघ के सदस्य हैं, वे भी श्रम आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने में असमर्थ हैं।

3. शिक्षा का अभाव (Lack of education)– भारत में सामान्यतः श्रमिक अशिक्षित हैं। वे सामूहिक सौदेबाजी और संघ का महत्त्व समझ पाने में असमर्थ हैं। धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता और शोषण का शिकार सामान्य भारतीय श्रमिक सहज ही श्रम-संघ का सदस्य बनने के लिए तत्पर नहीं होता। शिक्षा के अभाव के कारण वह प्रायः श्रम-संघों को हड़ताल कराकर मजदूरी बढ़वाने वाली संस्था समझता है। ऐसा करने में असफल होने पर इन श्रमिकों की श्रम-संघों में आस्था कम होने लगती है और वे अपने संगठनों से विरक्त होने लगते हैं।

4. श्रमिकों के बीच विभिन्नताएं (Diversified background of workers)– भारत में धर्म, भाषा, जाति एवं क्षेत्र से सम्बन्धित विभिन्नताओं के कारण भावात्मक एकता का अभाव है और भारतीय श्रमिक वर्ग इसका अपवाद नहीं है। इस देश में औद्योगिक नगरों में देश के विभिन्न भागों से आकर काम करने वाले श्रमिक जो भिन्न भाषाएं बोलते हैं, जिनके धर्म, रीति-रिवाज और परम्पराएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं, कभी अपने को एक धर्म का मानने के लिए आसानी से तैयार नहीं होते। श्रमिकों की इस विभिन्नता का पूंजीपतियों द्वारा पूरा फायदा उठाया जाता है और वे श्रमिक वर्ग में फूट डालकर प्रभावशाली श्रम-संघ की स्थापना नहीं होने देते।

5. राजनैतिक दलों का प्रभाव (Influence of political parties)–भारत में अधिकांश श्रम-संघों का नेतृत्व ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है जो स्वयं श्रमिक नहीं हैं और जिनका सम्बन्ध किसी न किसी राजनैतिक दल से है। इंगलैंड में भी श्रम-संघों का सम्बन्ध वहां की लेबर पार्टी से है और अधिकांश श्रम-संघों को इसी दल के व्यक्तियों का नेतृत्व प्राप्त है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि वहां श्रम-संघों की नीति लेबर पार्टी की नीति से स्वतन्त्र होती है। भारत में राष्ट्रीय स्तर के सभी श्रम-संगठनों पर सम्बन्धित राजनैतिक दलों की नीति की छाप है। फलस्वरूप श्रमिकों के हितों की तुलना में राजनैतिक दलों के उद्देश्य की प्राप्ति भारतीय श्रम-संगठनों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त कुछ श्रम-संघों के नेता स्वार्थी मनोवृत्ति के हैं जो अपने व्यक्तिगत हितों के लिए श्रम-संघों का प्रयोग करते हैं।

6. श्रम-संघ प्रतियोगिता (Competition among trade unions)– भारतीय श्रम-संघ आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण दोष यह है कि प्रत्येक उद्योग में श्रमिकों के प्रतियोगी संगठन बन गए हैं। इसका प्रधान कारण देश के विभिन्न राजनैतिक दलों की आपसी प्रतियोगिता है। प्रायः ये श्रम-संघ सामूहिक रूप से श्रमिकों के हित में कार्य नहीं करते। ऐसा अक्सर देखा गया है कि जब किसी उद्योग का एक श्रम-संघ हड़ताल की घोषणा करता है तो दूसरे श्रम-संघ उसका विरोध करते हैं। इससे श्रमिक भ्रम में पड़ जाते हैं और नियोजकों को लाभ होता है।

7. कल्याणकारी कार्यों को महत्त्व न देना (Neglect of welfare activities)– पश्चिमी देशों में श्रम-संघ काम की दशाओं और मजदूरी में सुधार के लिए नियोजकों से संघर्ष के अतिरिक्त अपने सदस्यों के हित में अनेक कल्याणकारी कार्य सम्पन्न करते हैं। भारत में श्रम-संघों ने अभी इस दिशा में कोई काम नहीं किया है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं। प्रथम, श्रम-संघों के पास आर्थिक साधनों का अभाव है और द्वितीय, श्रमिक नेता कल्याणकारी कार्यों को आवश्यक महत्त्व नहीं देते।

8. काम की असंतोषजनक दशाएं (Unsatisfactory working conditions)– भारतीय उद्योग में काम करने की दशाएं सन्तोषजनक नहीं हैं। काम के घंटे अधिक और अवकाश कम है। इसके अतिरिक्त मिल तथा कारखानों का वातावरण कोलाहलपूर्ण और थका देने वाला होता है। अतः भारतीय श्रमिक काम से वापस आकर किसी अन्य कार्य में दिलचस्पी लेने के लिए तैयार नहीं होता है।

9. नियोजकों द्वारा विरोध (Opposition by the employers)– नियोजकों की सफलता श्रमिकों के शोषण द्वारा ही सम्भव है और श्रमिकों का अधिकतम शोषण उस समय होता है जब वे असंगठित होते हैं। इसलिए पूँजीपतियों द्वारा हमेशा ही श्रम-संघों के स्वस्थ विकास में बाधाएं डाली गई हैं। प्रायः मिल मालिक और अन्य नियोजक श्रमिकों को डरा-धमकाकर श्रम-संघों का सदस्य बनने से रोकते हैं। श्रमिक नेताओं को तंग किया जाता है, श्रम-संघों के सक्रिय सदस्यों की छंटनी का प्रयास किया जाता है, आदि। इसके अलावा, पूँजीपति श्रमिक वर्ग में फूट डालने का भी प्रयास करते हैं।

10. ठेकेदारों द्वारा विरोध (Opposition by the contractors)– भारत में कारखानों, खदानों और बागानों आदि में श्रमिकों को रोजगार दिलाने का काम ठेकेदारों द्वारा किया जाता है। ये ठेकेदार श्रमिकों की अज्ञानता और लाचारी का फायदा उठाकर उनका शोषण करते हैं। श्रम-संघों के बन जाने से ठेकेदारों का प्रभाव कम हो जाता है। अतः अपने अस्तित्व एवं प्रभाव को स्थायी रखने के लिए ठेकेदार भी श्रम-संघों का विरोध करते हैं।

डाक्टर पुनेकर श्रम-आन्दोलन की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "भारतीय श्रम-संघ बाहरी नियन्त्रण, राजनैतिक संघवाद, प्रतियोगी श्रम-संघों की बहुरूपता, वित्तीय साधनों के अभाव, कम सदस्यता, सामूहिक सौदेबाजी और कल्याणकारी कार्यों की उपेक्षा, सरकारी यन्त्र पर निर्भरता तथा श्रम-संघवाद की निजी कमजोरियों के विषम चक्र में फंसे हुए हैं।"

Scanned with CamScanner

भारतीय श्रम-संघों को सशक्त बनाने के लिए सुझाव
(Suggestions for Strengthening Trade Unions in India)

भारत में श्रम-संघों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सामान्यता निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :

1. एकता की आवश्यकता (Need for unity)– भारत में श्रम-आन्दोलन को सशक्त बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता श्रम-संघों में एकता की है। इस समय राष्ट्रीय स्तर के अनेक श्रम-संगठन हैं। वस्तुतः यह श्रम-संघ आन्दोलन की कमजोरी का परिचायक है। इस समय यदि श्रम संघों को सशक्त बनाना है तो राष्ट्रीय स्तर का केवल एक श्रम-संगठन होना चाहिए और उद्योग स्तर पर वी.वी. गिरि के सुझाव "एक उद्योग एक श्रम-संघ" को स्वीकार करना चाहिए।

2. राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता (Need for national integration)–सशक्त श्रम-आन्दोलन के लिए श्रमिक जाति, धर्म, भाषा, प्रान्तीयता आदि के आधार पर विभाजित नहीं होने चाहिएं। श्रमिकों को शिक्षा देनी चाहिए कि अनेक विभिन्नता के बावजूद भी उनका एक वर्ग है और उसमें एकता नहीं टूटनी चाहिए।

3. सदस्यता का विस्तार (Increased membership)– श्रम-संघों की शक्ति उनकी सदस्यता पर निर्भर होती है। इसलिए श्रमिक नेताओं का प्रयास होना चाहिए कि प्रत्येक श्रमिक श्रम-संघ का सदस्य बने। प्रायः जिस श्रमिक की स्थिति अच्छी होती है और जिसे अपने मालिक से सामान्य रूप से कोई शिकायत नहीं होती, वह अपने वर्ग हित को न समझकर श्रम-संघ का सदस्य बनने के लिए तैयार नहीं होता। इसी प्रकार काफी संख्या में श्रमिक केवल उदासीनता के कारण श्रम-संघों के सदस्य नहीं बनते। इसलिए श्रमिकों में वर्ग चेतना पैदा की जानी चाहिए। इस प्रकार श्रम-संघों की सदस्यता बढ़ा सकना सम्भव होगा।

4. आर्थिक स्थिति में सुधार (Improvement in financial position)– अधिकांश भारतीय श्रम-संघों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। सदस्यता कम होने के कारण आर्थिक साधन भी थोड़े होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त श्रम-संघों के सदस्य भी नियमित रूप से चन्दा नहीं देते। इस स्थिति में सुधार आवश्यक है। जिन श्रमिकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, उनमें वर्ग चेतना जागृत कर उन्हें यह समझाया जाना चाहिए कि श्रम-संघ को दिया जाने वाला चन्दा किसी भी अन्य व्यय से कम आवश्यक नहीं है।

5. वैतनिक कर्मचारी (Paid employees)– श्रम-संघ के दफ्तरों में नियमित रूप से काम हो इसके लिए वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति आवश्यक है। जो लोग बिना किसी वेतन के श्रम-संघ के कार्यों को करने के लिए तत्पर होते हैं, उनका उत्साह कुछ ही समय में ठण्डा पड़ जाता है और फिर वे जिम्मेदारी के साथ काम नहीं करते। अतः श्रम संघों को आवश्यकतानुसार वैतनिक कर्मचारी नियुक्त करने चाहिए।

6. हड़ताल कोष (Strike fund)– श्रमिकों का संभवतः सबसे प्रभावशाली अस्त्र हड़ताल है जिसके द्वारा वे अपने नियोजकों को दबाकर अपनी मांगे पूरी करवा सकते हैं। परन्तु हड़ताल में जहां पूँजीपतियों को हानि होती है, वहां श्रमिकों को भी बहुत कष्ट उठाना होता है। सामान्य भारतीय श्रमिक के पास बचत कर सकने की क्षमता नहीं है और इसलिए लम्बी हड़ताल के समय श्रमिकों को भुखमरी का सामाना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनका मनोबल सहज की टूट जाता है और हड़ताल असफल हो जाती है। अतः श्रम-संघों को हड़ताल कोष का निर्माण करना चाहिए। उन्हें श्रमिकों से थोड़ा-थोड़ा चन्दा निरन्तर लेते रहना चाहिए और लम्बी हड़ताल के समय उससे सदस्यों की सहायता करनी चाहिए।

7. कल्याण कोषों की स्थापना (Creation of welfare funds)– अब तक भारत में श्रम-संघों ने कल्याण कार्यों की उपेक्षा की है। इसलिए श्रमिकों के साथ उनका सम्बन्ध स्थायी नहीं रह पाता। अनेक श्रमिकों को तो श्रम-संघ के अस्तित्व का ज्ञान ही उस समय होता है जब मालिक के विरुद्ध कोई संघर्ष प्रारम्भ होता है। यह स्थिति ठीक नहीं है। श्रम-संघों को सदस्यों के परिवारों की चिकित्सा, रात्रि शिक्षा, मनोरंजन तथा अन्य कल्याण कार्यों में दिलचस्पी लेनी चाहिए और इसके लिए कल्याण कोषों का निर्माण किया जाना चाहिए।

8. जनमत तैयार करना (Creation of favourable public opinion)– लोकतन्त्रीय प्रणाली में किसी भी वर्ग की सफलता उस समय तक संदेहजनक होती है जब तक कि जनमत उसके समर्थन में न हो। इसलिए श्रम संघों को चाहिए कि वे अपने प्रचार कार्य के द्वारा समाज के अन्य वर्गों को भी अपनी नीतियों और मांगों के औचित्य से अवगत कराएं। इससे पूँजीपतियों के साथ संघर्ष के समय उन्हें जनसाधारण का समर्थन मिल सकता है और सरकार भी हस्तक्षेप कर उनकी मांगों को पूरा करने के लिए नियोजकों पर दबाव डाल सकती है।

Scanned with CamScanner